'कठगुलाब':एब्यूज्ड स्त्री चिंतन से आगे की कथा

डॉ.वीरेन्द्र प्रताप
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक,म.प्र.484887
मो.7024449723
ईमेल:virendra5.pratap@gmail.com

सारांश:-

मृदुला गर्ग अंतर्राष्ट्रीय स्तर की कथाकार हैं। उनकी कहानियां,निबंध और वैचारिक लेख विदेश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।उनके सर्वाधिक विवादित उपन्यास 'चित्तकोबरा' का 1987 में जर्मन में अनुवाद हो चुका था और 1990 में अंग्रेजी में यह उपन्यास अनूदित हुआ। 'कठगुलाब' उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद 2003 में 'कंट्री ऑफ़ गुडवाइज' नाम से हुआ। इन्हीं उपन्यासों पर अश्लीलता का आरोप भी लग चुका है। 'कठगुलाब' को स्त्री की जिजीविषा का प्रतीक बनाया है मृदुला जी ने। यह जिजीविषा इस उपन्यास के अनेक पात्रों में दिखाई देती है।जहां तमाम घुटन,उपेक्षा,अपमान,तिरस्कार,शोषण और प्रताड़ना को सहते ,टूटकर बिखरते हुए और फिर ताकत बटोर कर अपने लिए राह बनाती स्त्रियाँ आगे बढ़ जाती हैं। इस आगे बढ़ने की ताकत उन्हें पश्चिमी समाज के सिस्टरहुड और भारतीय समाज के बहनापे से मिलता है।समाज और परिवेश भिन्न-भिन्न होते हुए भी स्त्री का शोषण एक जैसे होता है ,पुरुष की मानसिक प्रवृत्तियाँ एक जैसी देखने को मिलती हैं।इसीलिए स्त्री मुक्ति का प्रयास व्यक्तिगत न होकर सामूहिक प्रयास बन जाता है और यह सामूहिकता बोध एक सीमा के आगे जाकर जेंडर के भेद को भी खत्मकर मानवीय मुक्ति में तब्दील हो जाता है।इस उपन्यास को गालियों के लिए नही मानवीय मुक्ति और शोषण की संस्कृति के बरक्स समता मूलक समाज के निर्माण की चेतना के लिए पढ़ा जाना चाहिए।आत्मा और देह,स्त्री और पुरुष के अभिप्रेरित लक्षणों के मिश्रण के बिना नए समाज और संस्कृति का सृजन संभव नही है।

बीज शब्द:- *कठगुलाब,एब्यूज्ड,स्त्री मुक्ति,नारीवाद,लेस्बियनिज्म,समता,स्वतन्त्रता,सामाजिक-सांस्कृतिक सृजन*

प्रस्तावना:-

हिंदी कथा साहित्य में मृदुला गर्ग की पहचान एक नारीवादी लेखिका के रूप में स्थापित है|उनके कुछ उपन्यासों पर अश्लीलता का आरोप भी लगाया जाता रहा है।'चित्तकोबरा' उपन्यास पर तो इतना बवाल हुआ था की मृदुला गर्ग जी को गिरफ्तारी का वारंट जारी हुआ और कोर्ट-कचहरी के चक्कर भी काटने पड़े थे।ऐसा नहीं है कि साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता पर बहस पहले नहीं हुई है।रेणु का 'मैला आँचल'राही मासूम रजा का 'आधा

गाँव'और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दा घर'जैसे दर्जनों ऐसे उपन्यास हैं जिनमें गालियों की भरमार है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' पर भी संयत-असंयत काम प्रसंग की चर्चा होती रही है।मुझे लगता है कि साहित्य में सेक्स की चटपटी भाषा, जैसे सड़क छाप उपन्यासों में होती है और देह और समाज की वैज्ञानिकता के बीच फर्क को जरूर ध्यान में रखना चाहिए।इसी अर्थ में मैं चाहता हूँ कि उपन्यास के कुछ प्रसंगों,जिन्हें अश्लील माना जाता है उन्हें सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और इसके पार जाकर उन प्रसंगों की सामाजिक पड़ताल की जानी चाहिए जहां कथाकार का लेखिकीय उद्देश्य निहित होता है।मनुष्य की मानसिक दुष्प्रवृतियों को उजागर किये बिना या उसका लेखकीय ट्रीटमेंट किये बिना किसी चिंतन की धारा एकांगी हो सकती है।इसलिए इसे नजरअंदाज करने से न सिर्फ एक पक्ष की चिंतन प्रक्रिया तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों से घिर जाती है बल्कि घातक भी हो जाती है।मृदुला गर्ग जी के साथ चित्तकोबरा के सन्दर्भ में भी यही हुआ था।

मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब'उपन्यास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री जीवन की गहन त्रासदी की यथार्थ कथा है।भारत से लेकर पश्चिमी दुनिया तक की अनेक घटनाओं,नयी-पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों के जीवन अनुभव और बौद्धिक जगत में विमर्श-चिंतन,आन्दोलन में सक्रिय महिलाओं से लेकर नर्मदा जैसी घरेलू महिलाओं के जीवन संघर्ष और मुक्ति की चेतना को एक प्लेटफॉर्म पर रख कर जांचने-परखने का अद्भुत प्रयास है।'कठगुलाब'एक प्रतीकात्मक शीर्षक है जिसका आशय'स्त्री की जीवटता' है| सिमोन द बुआ का बहुचर्चित कथन 'स्त्री पैदा नहीं होती है बना दी जाती है' यह बनाया जाना जेंडर विभेद का एक सांस्कृतिक रूप है। मृदुला गर्ग भी यही कहना चाहती हैं कि स्त्री के भीतर के कोमल तंतु सृजन की अपार संभावनाओं को समेटे हुए हैं ,लेकिन वे संभावनाएं तब तक प्रतिफलित नहीं होती जब तक की उसकी देख-रेख यानी उचित वातावरण न बना दिया जाये।गुलाब की बाड लगा देने पर अपने आप खिल जाती है लेकिन कठगुलाब के लिए उचित वातावरण तैयार करना होता है।जब तक स्मिता के जीजा,डॉ जारविस,इर्विंग,गनपत और असीमा का बाप जैसे 'कठफोड़वा'इस समाज में मौजूद रहेंगे,कठगुलाब के खिलने की संभाव्यता भी शून्य रहेगी।इन्हीं संभावनाओं की तलाश है यह उपन्यास।

नारीवादी आन्दोलन के विभिन्न चरणों और लहर-दर-लहर चल रही वैचारिक बहसों में मानवीय गरिमा और स्वतन्त्रता के सवाल लगातार उठाये जाते रहे हैं।मानवीय गरिमा और स्वतन्त्रता के साथ शुरू हुआ पश्चिम का नारीवादी आन्दोलन एक ऐसे मोड़ पर भी पहुंचता है जहां बहुतेरी नारीवादी स्त्रियों ने अपने जीवन से न सिर्फ पितृसता को पूरी तरह से खारिज किया बल्कि पुरुष के अस्तित्व को ही अपने जीवन में निषेध कर दिया।सवाल यह है कि इस निषेध से कोई स्वस्थ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हो सकता है क्या ?नर्मदा की कहानी सुनाते हुए स्मिता के मन में यह सवाल उठता है कि-"अगर मर्द-औरत के बीच का रिश्ता शोषक-शोषित का रिश्ता है,तो क्या उसका विकल्प लैस्बियनिज्म है?"[1] पितृक संस्कृति के बरक्स एक प्रति संस्कृति का सृजन स्त्रियों के लिए बेहद जरूरी है,लेकिन वह प्रति संस्कृति जैविक जरूरतों को नकार कर निर्मित नहीं हो सकती।लेस्बियनिज्म देह की जरूरतों का नकार नहीं,पुरुष के नकार की प्रवृति है।यह जरूर है की इससे स्त्रियाँ कुछ समय तक पुरुषों पर आभाषी रूप से सफलता महसूस कर सकती हैं लेकिन किसी स्थायी व्यवस्था का प्रति संस्कृति के विकल्प के तौर पर निर्मित नहीं कर सकती हैं।सिमोन ने स्वीकार किया है कि-"नारी के लिए कामेक्षा –जैविक,सामाजिक तथा

मनोवैज्ञानिक तौर पर भिन्न होती है।कई बार स्त्री को - - यदि वह यौन-तुष्टि चाहती है - - ऑब्जेक्ट बनना पड़ता है|"[2] आगे सिमोन ने लिखा है कि-"कामुकता का अनुभव एक ऐसा अनुभव है जो कि मानव को अपनी स्थिति की जटिलता का तीव्रतम बोध कराता है ;इस अनुभव के अंतर्गत वे शरीर व् भावना के स्तर पर स्वयं के प्रति सचेत हो पाते हैं।यह स्थिति औरतों के लिए और भी जटिल हो जाती है,क्योंकि वह पहले स्वयं को वस्तुगत रूप में पाती हैं और यौन क्रिया के स्वतंत्र एहसास के लिए अपनी स्वतन्त्रता के विषय में सचेत नहीं हो पाती हैं ;स्वयं को बद्ध स्थिति में देखने की बजाय अपनी स्वतंत्र स्थिति का आकलन करना चाहिए –यह कठीन और खतरनाक स्थिति है ;इस स्थिति में हर कोई असफल होता है।"[3] दरसल परपीडन से बचने का उपाय कई बार आत्म पीडन में तब्दील हो जाता है। अमेरिका में उपेक्षित,प्रताड़ित स्त्रियों के लिए कार्यरत संस्था 'राँ'यानी 'रिलीफ फॉर एब्यूज्ड विमेन'में काम करते हुए स्मिता ने तीन तरह की स्त्रियों को देखा था कि "पहली वे जिन्हें एब्यूज्ड विमेन कहते थे जो लांछित,प्रताड़ित,बलात्कृत और पीटी हुई औरतें थीं,जिनके भीतर प्रतिरोध की चेतना के रूप में पलायन का भाव आया वह भी बहुत बाद में ,दूसरी वे थीं जिनपर किसी न किसी तरह का कहर टूटा था वे इस संस्था में सहानुभूति देने आती थीं,बदले में खुद भी सहानुभूति हासिल करती थीं,तीसरे दर्ज़े की स्त्रियाँ जो अपनी बैद्धिकता,पद और रुतवे पर गर्व करतीं थीं,इनके भीतर करुणा कम दंभ ज्यादा था।दूसरों के अनुभव को देखकर इन्हें पुरुषों के प्रति घृणा का भाव पैदा हो गया था।"[4] इस तीसरे स्तर की कुछ महिलायें लेस्बियन थीं और कुछ बिना शादी के दूसरे,तीसरे मर्दों के साथ स्वतंत्र तरीके से रह रहीं थीं –"जो हर छठें-छमासे अपना साथी बदल लेतीं थीं।मजे की बात यह थी कि अपनी तमाम तटस्थता के बावजूद जब वे मौजूदा प्रेमी से अलग होती ;तो गहरी भावात्मक यातना से गुजरतीं|"[5] यौनिक या जैविक जरूरतें मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है।इस प्रवृति को नकार पाना सहज नहीं है।

बहुचर्चित नारीवादी लेखिका बैट्टी फ्रिडन ने भी स्त्री की यौनिकता पर सवाल उठाते हुए लिखा था कि-"क्या नारी अपने लैंगिक अस्तित्व को नकार सकती है ? क्या वह पूर्णतः स्वतंत्र हो सकती है ? क्या संतान से मुक्ति या परिवार के दायरे से बाहर रहकर जीना उसे मुक्त करता है ? यौन राजनीति नारी मुक्ति आन्दोलन का मुद्दा नहीं है।उसे केन्द्रीय मुद्दा बनाने से हमारे हितैषियों के मन में कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होते हैं और विरोधी इस आधार पर हमारे कार्यक्रमों को बदनाम करते हैं और हमारी शक्ति क्षय होती है।मूल मुद्दा यौन राजनीति नहीं आर्थिक समता,सामाजिक न्याय,शिक्षा का बराबर अवसर उपलब्ध होना है।एक जैसे कार्य के लिए पुरुष और नारी को सामान वेतन और सुविधाएं उपलब्ध कराना है और इस नीति को समाप्त करना है कि कुछ कार्य केवल महिलाओं के लिए ही तय हैं।"[6] 'द सेकेंड स्टेज' पुस्तक में बैट्टी फ्रीडन ने लिखा था कि-"अब हम यह महसूस करतीं हैं कि नारी मुक्ति आन्दोलन के प्रथम चरण की मांगों के आधार पर पुरुषों और बच्चो के साथ या उनके बगैर ज़िंदा रहना संभव नहीं। नया चरण व्यावसायिक सफलता और पारिवारिक जीवन दोनों की आवश्यकताओं को एक साथ लेकर बढेगा।"[7] कठगुलाब उपन्यास में बहुत सी ऐसी घटनाएं आई हैं जहां स्त्रियाँ गर्भधारण और बच्चे पैदा करने के लिए बेहद लालायित दिखाई देती हैं।वह चाहे भारत के पिछड़े क्षेत्र और निम्न वर्ग की नर्मदा हो या पश्चिम की मारियान या राक्जांन।दरसल फेमिनिस्ट होकर भी औरत की प्रकृति को नहीं नकारा जा सकता है दूसरी बात यह कि सामाजिक परिवर्तन के लिए जरुरी है पुरुष की मानसिकता में बदलाव।इसके लिए स्त्रियों के पास एक ही रास्ता

है कि नयी पीढ़ी का सृजन वे अपने हाथों अपने तरीके से करें।पितृक मूल्य कोई शाश्वत मूल्य नहीं है जिसके भीतर बदलाव नहीं हो सकता है,बल्कि यह अपनी जरूरतों के हिसाब से निरंतर बदलते रहा है यही कारण है की स्त्री को कभी उसकी इक्षा के विरुद्ध गर्भ धारण करने के लिए मजबूर किया जाता है और कभी गर्भपात के लिए। पुरुषों पर बच्चों का बोझ न हो या उनकी यौनिक स्वच्छन्दता में कोई बाधा न आये इसलिए इर्विंग जैसे पुरुष जो स्त्रियों पर जीवन यापन के लिए निर्भर रहते हैं तर्क करते हैं कि-"औरत जब हर क्षेत्र में काम कर रही है।सुबह से शाम तक व्यस्त रहती है तो उसे इस आदिम प्रवृति और मान्यता से मुक्त होना चाहिए,वरना किसी महान कलाकृति की रचना नहीं हो पाएगी।"[8] इसके लिए मारियान को इर्विंग ने यह भी समझाया कि-"आदिम समाज स्त्री को शिशु की रचना में व्यस्त रखकर,उसे पुरुष की सुरक्षा पर निर्भर बनाना चाहता था और यह भी ढकोशला फैलाया कि औरत को बच्चे की सृष्टि करके इतनी पूर्णता मिल जाती है कि उसमें काव्य का कलाकृति की सृष्टि करने की भूख बची नहीं रहती।"[9] पितृक मूल्यों के इन्हीं दबाओं ने सामाजिक संरचना में बदलाव किया परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरुष के बीच संबंधों का स्थायित्व समाप्त हो गया और भोगवादी संस्कृति ने जन्म लिया।नारीवादी आन्दोलन व्यवस्था में आमूलचूल या क्रांतिकारी परिवर्तन चाहता है।इस परिवर्तन के लिए स्त्री विद्रोह की हद तक मुखर होती है इसलिए कई बार यह आन्दोलन बहुत उग्र हो जाता है और एकांगिकता की और बढ़ जाता है।जबकि जर्मेन ग्रीयर का मानना है कि ऐसी स्थिति से बचना चाहिए।"जब यह आन्दोलन पुरुषों से अपनी स्वतंत्रता मांगते हैं या स्वतन्त्रता देने को मजबूर करते हैं तो यह स्त्री-पुरुष के अलगाव और अपनी निर्भरता को ही आगे बढ़ा रहे होते हैं।"[10] अलगाववाद के मूल्यों वाली क्रांतियों,स्त्री देह और यौनिकता पर सचेत करते हुए जर्मेन ग्रीयर ने लिखा है कि-"क्रांति को उन कुछ सन्दर्भों को ठीक कर पाना चाहिए जिन्हें स्त्रीत्व,काम,प्रेम और समाज की हमारी पूर्वधारणाओं ने मिलकर गधा है।यह ऊर्जा के पुनर्विस्तार का प्रस्ताव रखती है,दमन के लिए नहीं कामना,गति और सृजन के लिए ऊर्जा का उपयोग।काम को शक्तिशाली और शक्तिहीन,दबंग और दबैल,लैगिक और अलिंगी, के बीच व्यापार से बचना होगा ताकि वह प्रभविष्णु,सौम्य,कोमल लोगों के बीच संवाद का एक स्वरूप बन पाए ,यह इतर लिंगी संपर्क की मनाही से नहीं हो सकता।"[11] आन्दोलन विषमता को समाप्त करने के लिए होते हैं वर्चस्व को स्थापित करने के लिए नहीं,इस बात का ध्यान हर परिवर्तनकामी व्यक्ति को रखना चाहिए।

विवाह नामक संस्था को स्त्री-पुरुष के जीवन में स्थायित्व का आधार माना जाता है।यह आधार परस्पर एक-दुसरे की निर्भरता पर ही टिका होता है,लेकिन अक्सर यह देखा जाता है इस व्यवस्था एक पदानुक्रम मौजूद है।इस पदानुक्रम से बचने का एक रास्ता प्रेम या स्त्री-पुरुष के विवाहेतर सम्बन्ध हैं|लेकिन इन संबंधों की अस्थिरिता इसकी आलोचना की जमीन तैयार करती है।वैसे तो प्रेम को बहुत उच्च और पवित्र दर्जा दिया जाता है लेकिन कई बार यह इतना विकृत हो जाता है की घृणा की हद तक पहुँच जाता है आत्मपीडन,परपीडन,अपराधबोध और स्त्रियों के शारीरिक हिंसा ,दमन और अक्सर गाली-गलौज पर जाकर ख़त्म होता है।विवाह संस्था के भीतर सामाजिक दबाव और असुरक्षाबोध की वजह से सालों-साल स्त्रियों को शोषण-उत्पीडन का शिकार होना पड़ता है,यह उपन्यास इन सन्दर्भों को बहुत बारीकी से उठाता है ।इस उपन्यास में स्मिता,मारियान,एलेना,सूजन,राक्जांन,नर्मदा और असीमा जैसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने पितृसत्तात्मक मूल्यों की

घुटन और यातना को झेला है।जीजा द्वारा बलात्कृत स्मिता प्रतिशोध की आग लिए बडौदा के लिए निकली तो कानपुर पहुँच गयी और फिर अमेरिका। जिस शोषण और दमन से मुक्त होने के लिए उसने घर छोड़ा आखिरकार अमेरिका पहुंचकर उसका कोई समाधान नहीं निकला।सांस्कृतिक द्वंद्व से जूझते हुए अमेरिका में वह एक साइक्याट्रिस्ट डॉ जारविस के द्वारा फिर उसी शोषण का शिकार होती है अंतर बस इतना था कि जीजा के लिए प्रतिशोध की आग ज़िंदा थी और जारविस को स्मिता ने भी अच्छे से ठोक-पीट कर कुछ संतुष्ट हो ली थी।मारियान का रूथ से मारियान बनने की एक त्रासद कथा है।लेकिन जीवन में कई उलट-फेर,उतार-चढ़ाव से उसका यही निष्कर्ष था कि-"हर औरत में जुल्म उठाने की एक ऐसी महारत देखी जा सकती है कि सोफेस्टकेटेड से सोफेस्टकेटेड औरत भी कहीं-न –कहीं एक मामूली किसान सी औरत की तरह रोती-कलपती पायी जाती है।"[12] सातवें दशक के आस-पास अमेरिका में पूंजीवाद चरम पर था।पूंजी की ताकत पर हर चीज खरीदी जा सकती थी एक ऐसा भ्रम का वातावरण बनाया गया था।जीवन में यांत्रिकता इस तरह हावी होने लगी की मानवीय संवेदनाओं में रिक्तता भर गई।पूंजी में अंधे लोगों ने दौलत को शाश्वत मूल्य के रूप में स्वीकार किया,उसकी ताकत पर हर चीज खरीद लेनी चाही।दौलत की ताकत पर सौन्दर्य का बाज़ार परवान चढ़ा और सौन्दर्य के इस बाजारीकरण ने स्त्री को सिर्फ देह या उपभोग की वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया।परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों को अपनी बदली हुई भूमिका में खुद को पारिभाषित करना जरुरी हो गया। मारियान की माँ वरजिनया एक खूब सूरत महिला थी।जिसने अपने सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए प्लास्टिक सर्जरी कराई हुई थी और लिबास पर खासा ध्यान देती थी।पिट्सवर्ग के नामी-गिरामी लेखक ,कलाकार,उद्योगपति और व्यापारी सब उसके सौन्दर्य से प्रभावित थे। लेकिन कैंसर की बिमारी से जूझती वरजिनया जब मृत्यु शैया पर पड़ी थी उस समय मारियान ने जो महसूस किया वह महत्वपूर्ण है।वह कहती है "उस बिमारी के दौरान,मैंने सिर्फ माँ को कंगाल होते ही नहीं देखा था,अमेरिका के दो कल्ट आइकांस को टूटते बिखरते भी देखा था- दौलत और जवानी।"[13] मृदुला जी ने मारियान के इस कथन से पूंजी और सौन्दर्य के मिथ को तोड़ा है।

नर्मदा एक कामकाजी घेरलू महिला है।निरंतर अन्याय,अत्याचार सहते हुए भी वह हिम्मत नहीं हारती,पहले आर्थिक स्वतन्त्रता हासिल करती है,अपने भीतर शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना विकसित करती है,स्वभाव में दबंगई भी आ जाती है।इस व्यवहार को हासिल करने में बहुत कुछ असीमा का प्रभाव था।लेकिन इसके बावजूद वह पति और बच्चों के मोह से विरक्त नहीं हो पाती है।असीमा ने उपन्यास में खुद नाटकीय तरीके से अपना परिचय दिया है।पहला तो यह की उसने खुद के सीमा नाम को असीमा में तब्दील किया था।दूसरा यह की उसे मर्दों से नफरत थी।सबसे ज्यादा नफरत अपने बाप से। उसके बाप ने उसकी माँ के रहते ही दूसरी औरत रख ली थी क्योंकि माँ हर वक़्त उसकी भूख मिटाने को न तत्पर रहतीं थीं और नही उन्हें देह प्रदर्शन पसंद था।असीमा की माँ हर तरह की सीमा में बंधी,एक अड़ियल,जिद्दी औरत थी।यह असीमा का कथन है।असीमा की माँ को फेमिनिज्म के बारे में कितनी जानकारी थी इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है वह –"आदर्श गृहिणी,कर्तव्यपरायण माँ ,अपनी सीमाओं में आबद्ध,सतयुगी काल से चली आ रही,संतोषी भारतीय नारी थी।"[14] लेकिन माँ के अड़ियल व्यवहार से असीमा कहती है –"क्या महज जिद के बल पर कोई औरत फेमिनिस्ट कहला

सकती है ?जरूरी नहीं है कि हर जीवन मूल्य को विचारधारा में बाँध कर ही देखा जाए।असीमा के बाप की दूसरी शादी के बाद माँ ने खुद ही सारे रिश्ते तोड़ दिए और "उसने न रोना-धोना मचाया,न गाली-गुफ्तार की।न तलाक मांगा न जेब खर्च।उलटे छाती ठोंक कर एलान कर दिया,;मेरे सिद्धांत मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते,जो किसी और का पति बन चुका हो।"[15] असीमा की माँ ने अपना रास्ता खुद बनाया तो यह उसका स्वाभिमान और सम्मान है।स्वाभिमान और अपनी शर्तों पर जीवन जीना एक मूल्य है।आर्थिक स्वतन्त्रता फेमिनिज्म के भीतर एक जरुरी मुद्दा है लेकिन जरूरी नहीं कि हर जीवन मूल्य को विचार धारा पर आंका जाए।

पश्चिमी सन्दर्भ में देखा जाए तो लेस्बियनिज्म और गर्भपात के लिए कानूनी लड़ाई नारीवादी आन्दोलन का हिस्सा है।इसकी आलोचना चाहे जितनी की जाये लेकिन स्त्रियों को इस स्थिति तक पहुंचाने में सर्वाधिक भूमिका पुरुषों की ही है।पुरुष की हिंसा और प्रताड़ना से त्रस्त होकर ही महिलाओं के भीतर पुरुषों के लिए घृणा का भाव पैदा हुआ।जबकि सृजन स्त्रियों का स्वभाव है।किसी व्यवस्था को विकृत करने के लिए स्त्रियों ने उसमें परिवर्तन नहीं किया है बल्कि विसंगतिपूर्ण ढाँचे को समाप्त कर उसका पुनर्निर्माण करना और समता मूलक समाज की स्थापना करना स्त्री चिंतन का केंद्र विन्दु है।फिर यह मामला गर्भ धारण,घरेलू श्रम या सामाजिक दायित्व का ही क्यों न हो।यही वजह है कि मृदुला गर्ग जी ने स्त्री सृजन को नया आयाम दिया है।स्मिता और असीमा जैसी नारीवादी स्त्रियाँ सिर्फ बौद्धिक विमर्श ही नहीं करतीं बल्कि सृजन के अन्य पक्षों का तलाश भी करती हैं और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह भी करती हैं।स्मिता के सूडो फेमिनिस्ट कहने के जबाब में असीमा का कथन देखा जा सकता है-"मुझे फेमिनिस्ट का तमगा लगाने के लिए किसी नीम-मर्दानी औरत के साथ सोना मंजूर नहीं है|"[16] उपन्यास में अतिवैज्ञानिकता या कहें यांत्रिकता की प्रवृति की भी कटु आलोचना की गयी है।विपिन मजूमदार और असीमा के संवाद में टेस्ट ट्यूब शिशु का जिक्र किया गया है।यह बात साफ़ तौर पर उपन्यासकार ने बता दिया है कि यह मातृत्व का विकल्प नहीं हो सकता है।गर्भ धारण का एक तरिका मात्र है।शिशु के गर्भ और स्तनपान की जरुरत तो माँ के बिना पूरी नहीं हो सकती है।यह क्षमता केवल स्त्रियों में है इसीलिए लेखिका का मानना है कि स्त्री के भीतर सृजन की क्षमता है,उदारता और संवेदनशीलता को बनाए रखने में मातृत्व की महत्वपूर्ण होती है| यह मानवीय मूल्य और मानवीय चेतना को किसी जड़ व्यवस्था से सिर्फ लड़ने में ख़त्म कर देने से बेहतर है उसका सृजनात्मक उपयोग करना।इस उपन्यास में मृदुला गर्ग जी ने स्मिता और असीमा के माध्यम से आक्सकॉम की सहायता से 'डिपराइल्ड गर्ल्स चाइल्ड ' के लिए काम करना और गुजरात के बन्थाल और गोधड जैसे गरीब,पिछड़े गाँव और वहाँ की उसर,बंजर धरती को हरा भरा करवा देना न सिर्फ स्त्री की पर्यावरणीय चेतना या ईको फेमिनिज्म को दर्शाता है बल्कि प्रति संस्कृति का निर्माण भी करना है। यह संस्कृति बृहत्तर मानवीय समाज को अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखती है।

निष्कर्ष:-

निषकर्षतः देखा जाए तो सम्पूर्ण मानव मुक्ति ही साहित्य का उद्देश्य होता है।व्यक्तिगत मुक्ति या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रयास एकांगी या एक पक्षीयता की निशानी है।व्यक्तिगत मुक्ति से कोई बड़ा सामाजिक-सांस्कृतिक

परिवर्तन नहीं हो सकता है।कठगुलाब उपन्यास में स्मिता और असीमा का गुजरात के गोधड और बन्थाल जैसे पिछड़े आदिवासी क्षेत्र में जाकर लड़कियों के लिए स्कूल खोलना,उसर-बंजर जमीन में सुधार करके हरा भरा और उपजाऊ बनाने का जिक्र न भी किया जाता तो भी स्त्री जीवन का पूरा संघर्ष उभर कर आता। लेकिन इस स्थिति में यह स्त्री संघर्ष सिर्फ स्त्री के लिए होता।पितृसत्ता के वर्चश्व को चुनौती देती स्त्रियाँ अपना प्रतिशोध पूरा कर सकती थीं,अपने निजी जीवन में सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच सकती थीं लेकिन स्त्री विमर्श के प्रचलित पैटर्न से आगे नहीं बढ़ पातीं।यह उपन्यास स्त्री विमर्श के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर नया रूप गढ़ता है जिसमें सिर्फ स्त्री मुक्ति की चेतना नहीं,सम्पूर्ण मानव मुक्ति की चेतना विद्यमान है|

सन्दर्भ सूची:-

1.गर्ग,मृदुला,कठगुलाब (2013,सातवाँ संस्करण)भारतीय ज्ञान पीठ,नयी दिल्ली,पृ.190
2.इस्सर,देवेन्द्र,स्त्री मुक्ति के प्रश्न (2009)संवाद प्रकाशन,मेरठ,पृ.18
3.पूर्वोक्त,पृ.19
4.कठगुलाब,पृ.56
5.पूर्वोक्त,पृ.57
6.स्त्री मुक्ति के प्रश्न,पृ.45
7.पूर्वोक्त,पृ.45
8.कठगुलाब,पृ.79
9.पूर्वोक्त,पृ.78
10.ग्रीयर,जर्मेन,बधिया स्त्री,अनुवाद मधु बी.जोशी(2001),राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली,पृ.19
11.पूर्वोक्त,पृ.19
12.कठगुलाब,पृ.97
13.पूर्वोक्त,पृ.72
14.पूर्वोक्त,पृ.165
15.पूर्वोक्त,पृ.166
16.पूर्वोक्त,पृ.173